International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 13-02-2026, Accepted: 14-03-2026, Published: 30-03-2026
Volume 12, Issue 1, 2026, Page No. 256-258

संतकाव्य में मानवीय मूल्य और आधुनिक समाज में उसकी प्रासंगिकता

अर्चना विश्वकर्मा
शोधार्थी, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम, भारत

सारांश
हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में भक्तिकाव्य का महत्वपूर्ण योगदान है या यूं कहें कि भक्तिकाव्य अपने आप में एक तरह से समृद्ध है जिसमें इस काल विशेष के राम काव्य, कृष्ण काव्य, संत काव्य और सूफी काव्य इन चारों विचारधाराओं ने शास्त्र को लोक से जोड़ने का अथक प्रयास किया। चारों विचारधाराएं अपनी – अपनी विशेषताएं लिए हुए हैं। राम काव्य में राम और उनसे जुड़े रिश्तों के चरित्र, मर्यादा,सत्य को आदर्श मानकर समाज को उसके अनुरूप व्यवहार रखने की प्रेरणा दी गई, कृष्ण काव्य में भक्त कवियों ने अपने भावों को व्यक्त करते हुए कृष्ण को ईश्वर मित्र और अपना मार्गदर्शक के रूप में प्रस्तुत किया जिससे समाज में नैतिकता के प्रसार हो।संतकाव्य में सामाजिक कुरीतियों,आडम्बरो, भेदभावों का खुलकर विरोध किया गया और ऑखिन देखी पर विश्वास करने पर जोर दिया गया साथ ही मानवीय मूल्यों समानता का संदेश दिया। सूफी कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से धर्म जाति और वर्ग से ऊपर उठकर समाज को प्रेम, सहिष्णुता और समानता का संदेश दिया। एक ही समय काल में ये सारी विशेषताएं होने के कारण ही जार्ज ग्रियर्सन ने समूचे भक्ति काल को 'स्वर्ण काल' कहा होगा।
संतकाव्य में कबीर, रैदास, मीरा, नामदेव, दादू आदि संत कवियों ने तत्कालीन समाज की समस्याओं, धार्मिक आडंबरों, जातिगत भेदभाव और आध्यात्मिक अज्ञानता के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद की। संत कवियों ने अपनी काव्य साधना में ऐसी चेतना का परिचय दिया, जो अपने समय से आगे बढ़कर आधुनिक युग के विचारों से मेल खाती है। संतकाव्य न केवल उस समय के समाज में क्रांति लेकर आया, बल्कि आज भी यह समाज को जागरूकता और आध्यात्मिकता का मार्ग दिखाता है। आधुनिक युग में जब उपभोक्तावाद, जातिवाद, और धार्मिक कट्टरता जैसी समस्याएँ उभर रही हैं, तब संतकाव्य के मूल्य प्रासंगिक साबित होते हैं।शोध पत्र में इन्हीं मूल्यों का विस्तृत विवेचन किया जाएगा साथ ही संत काव्य की ऐतिहासिक पक्षों को भी समझा जाएगा।

मूल शब्दः भक्तिकाल, काव्य, सामाजिक सुधार, जाति, ज्ञान, मानवीय मूल्य, एकेश्वरवाद

भक्तिकाल, भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और आर्थिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरूप उभरा। राजनीतिक अस्थिरता के कारण भक्तिकाल के समय में भारतीय समाज में धर्म आडंबरपूर्ण और जटिल हो गया था। धार्मिक कट्टरता, रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, मूर्तिपूजा, कर्मकांड, जातिवाद, और बाह्याचारों की अधिकता थी, जिससे आम जनता में असंतोष था और समाज में अराजकता का माहौल था। भक्तिकाल की निर्गुणपंत के संतकाव्यधारा ने इस सामाजिक उथल–पुथल पर गंभीर रूप से चिंतन किया। हिन्दी साहित्य कोश में "संत शब्द का अर्थ किसी भी पवित्रात्मा और सदाचारी पुरूष के लिए किया जाता है। इसका एक अन्य पर्याय 'साधु' और महात्मा भी माना जाता है।"[1] भक्ति आन्दोलन के समय संत शब्द का प्रयोग ऐसे महापुरूषों, साधकों एंव कवियों के लिए किया जाता था जो आत्मशुद्धि के सहारे मनुष्य में ही ईश्वर की खोज में लगे हुए थे।
इस काल के संतो ने अपने काव्य के जरिए समाज में फैले अंधविश्वास, जातिवाद और बाह्याचार का विरोध कर प्रेम, भक्ति, दया, करूणा, अहिंसा संवेदनशीलता, समभाव का संदेश दिया और जाति, धर्म, हिंसा के बंधन को नकारते हुए मानवमात्र के मूल्यों पर अधिक महत्व दिया। संतो ने अपनी कथनी और करनी में भेद नहीं किया। उन्होंने जो कहा है, वह उनके व्यवहार में था, उनका व्यक्तित्व उनकी कथनी का प्रत्यक्ष प्रमाण था। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं, "वे सीधे समाज के सुधार में आत्म–सुधार की कल्पना नहीं करते, अपितु अपने व्यक्तित्व के निखार में ही समाज का परिष्कार देखते हैं।"[2]
संतो का ज्ञान पुस्तकीय और शास्त्रीय ज्ञान तक ही आधारित नहीं था बल्कि उन्होंने आत्मानुभूति के आधार पर अपने विचारों भावों को लोगों के सम्मुख रखा और जन जन को आपस में जोड़ने का कार्य किया। जो लोग मात्र पुस्तकीय ज्ञान के बल पर अपने को सर्वश्रेष्ठ समझते थे उन्हें ललकारते हुए कबीर अपने काव्य में कहते हैं –

"मैं कहता हौं आंखिन देखी, तू कहता कागद की देखी।"[3]

कबीर का युग संघर्षमय था। ऐसे संघर्ष एवं धर्मान्धता के समय उन्होंने आंखों देखी कथनी और करनी द्वारा आदर्श स्थापित किया। कबीर का काव्य मानवीय मूल्यों की सघनता, गहनता, परिपूर्णता से युक्त गौरव का कार्य है जिसकी आत्मा या जीवन रस मानवीय मूल्य है ।
संत काव्यधारा अपने समय सीमा के बंधन को तोड़ती हुई जान पड़ती है।इन संतो द्वारा दिए गए विचार तत्कालीन समय में जितने उपयोगी थे उससे कहीं अधिक आज के समाज में उसकी आवश्यक है। आज के वैश्वीकरण के दौर में संतकाव्य इसलिए प्रासांगिक है क्योंकि वह जाति व्यवस्था और साम्प्रदायिक कट्टरता जैसी व्यवस्था का विरोधी है। अपने स्वतंत्र चिंतन के माध्यम से संत कवियों ने समाज में एक प्रकार की वैचारिक क्रांति को जन्म दिया है।
संत कवियों की अभिव्यक्ति का मुख्य साधन साहित्य ही था। ये संत भारतीय समाज के कोने–कोने में फैले हुए थे और अपने–अपने ढंग से समाज सुधार के कार्य में लगे हुए थे। ये संत निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और दर्शन की दृष्टि से ये संत अद्वैतवादी भी थे। एक ओर तो ये संत इस्लाम के एकेश्ववाद से प्रभावित थे तो दूसरी ओर उपनिषदों के तत्त्व चिन्तन से भी प्रभावित थे। इनकी साधना में ज्ञान, भक्ति और योग तीनों का समन्वय था।
इन संतो ने ईश्वर के सगुण रूप का विरोध करते हुए उसके निर्गुण रूप को अपनाया है। ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मोक्ष आदि के विषय में इन संतो के विचारों में एकरूपता दिखाई देती है

किन्तु उनकी अभिव्यक्ति शैली अलग–अलग है। संतों ने निराकार, निर्गुण ब्रह्म की उपासना की है जो संसार के कण कण में व्याप्त है उस ब्रह्म का कोई स्वरूप नहीं है किन्तु जब साधक उसके मूल तत्त्व को समझ लेता है। तो वह पुनः ब्रह्म के समान हो जाता है। संत कबीर ने जीव और ब्रह्म को एक मानते हुए उसमें कोई भेद नहीं किया है। जिस प्रकार कस्तूरी मृग की नाभि में ही निवास करती है। अज्ञानवश मृग उसे बाहर समझकर ढूढ़ता फिरता है,वैसे ही प्रत्येक घट में जीवात्मा के साथ परमात्मा का निवास है किन्तु अज्ञानवश उसे उसका स्पष्ट बोध नहीं होता है–

"कस्तूरी कुण्डल बसै मृग ढूढ़ै बन माहि
ऐसे घट–घट राम है दुनिया देखे नाहि।"[4]

इसी प्रकार संत दादू ने भी ब्रह्म को पुष्प की सुगंध के समान अदृश्य, अजन्मा और निराकार कहा है। दादू ने उस परमतत्त्व को सर्वव्यापक और अव्यक्त कहते हुए कहा है कि वह ईश्वर एक है परन्तु उसके पास पहुँचने के मार्ग अलग–अलग है। वह हमेशा हमारे साथ ही रहता है–

"दादू अैसा बड़ा अगाध है, सूशि जैसा अंग,
पुहप वास थैं पतला, सो सदा हमारै संग।"[5]

वर्तमान समाज जिस तरह कट्टरता की तरफ अग्रसित हो रहा है, वह बेहद चिंतनीय है। आज हम धर्म, जाति, संप्रदाय, पंथ, मंदिर–मस्जिद, काबा–कैलास को लेकर जितने उग्र हुए जा रहे हैं कि हमारी दृष्टि अंधता की शिकार हो गई है जिससे हम मानवीय मूल्यों को विस्मृत कर मानवी गरिमा को कुचलते हुए आगे बढ़ रहे हैं।समाज में कितनी ही बार युद्ध और दंगें ने अपना भयावह रूप दिखाया है, फिर भी मनुष्य तमाम अमानुषिक तत्त्वों को बढ़ावा दे रहा है जिसके कारण वह निरंतर अंधकार मय भविष्य के सृजन हेतु उन्मुख है। ऐसी स्थिति में संतो की वाणी, उनके विचारों के जरिए समझना सहज हो जाता है कि, संसार को चलानेवाली सत्ता हमें अनेक रूपों में दृष्टिगत है, लेकिन सत्य वास्तव यही है कि वह एकही है राम, रहिम, अल्लाह खुदा गोरख उसके अन्य रूप, नाम है।

हिंदी कविता के इतिहास में संतो की लोक व्याप्ति का कारण यह भी है कि इनकी पहुँच केवल पढ़े लिखों तक ही सीमित नहीं है बल्कि इनके पद गाँव में बिना पढ़े–लिखे लोगों के बीच भी विद्यमान है। निर्गुण गायन की परम्परा को गाँवों या शहरों में सब जगह सुना जा सकता है। सच्चाई यही है कि भक्तिकालीन साहित्य समय की दृष्टि से पुराना भले ही है लेकिन इसके विचारों में ओजस्विता है, शोषण मुक्त भारत का स्वप्न है। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक भारत के निर्माण का जो स्वप्न है, वह भी वहाँ मौजूद है। इसलिए भक्ति काल का साहित्य समृद्ध और कालजयी साहित्य है।

डॉ संगीता मोर्या लिखती के अनुसार –"प्राय सभी संत कवि कामकाजी गृहस्थ हैं, इसीलिए इनके पदों में किसान, मजदूर के साथ बढ़ई और वे सभी कामगार आते हैं जो देश की स्थिति बदलने में सहायक हैं, जो मेहनत कर रहे हैं। इसको हम ऐसे समझ सकते हैं कि इनके पदों में पूरा समाज, समाज के लोग और उनका व्यवसाय भी सम्मिलित है। अर्थात भक्तिकाव्य में तत्कालीन समाज अपने पूरे ताने–बाने के साथ मौजूद है। इसलिए आज पूर्वाग्रह से मुक्त होकर भक्ति काव्य की एक नई व्याख्या की जरुरत है। इसमें भी खासकर संत काव्य की।"[6]

जब आज भी हम समाज की संरचना को देखते हैं कि यहाँ श्रम करने वाले व्यक्ति और अधिक पूँजी वाले व्यक्ति में एक गहरी खाई है। छोटे काम करने वाले लोग अपने को भी छोटा समझते हैं लेकिन रैदास के यहाँ अपने काम को लेकर कहीं कोई हीन भावना नहीं है। चमड़े का काम करने वाले को आज भी उपेक्षित ही किया जाता है और तब भी यही स्थिति थी। रैदास में अपनी जाति और पेशे को लेकर कोई दुराग्रह नहीं है, दोनों को वह डंके की चोट पर स्वीकार करते हैं।

"बता रे पंडित ज्ञानी कौन चाम से न्यारा।
चाम का ब्रहमा चाम का विष्णु चाम का सकल पसारा।।
चाम अम्बर चाम की धरणी चाम का है जग सारा।
चाम का चन्दा चाम का सूरज चाम का नौलख तारा।।
चाम का योगी चाम का भोगी चाम के गुरू तुम्हारा।
कह रविदास सुनो रे पंडित ज्ञानी चाम का गुरू नाहि हमारा।।"[7]

हमारा यह समाज श्रमिक वर्ग को सबसे निचले पैदान पर रखता है। चमड़े का काम करने वाली, जाति के आधार पर तथा कर्म के आधार पर समाज में उपेक्षित रहे हैं। गुरु नानक जाति व्यवस्था के विरोधी थे, वे समन्वयशील और उदार प्रवृति के संत थे तथा ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें सोहार्दपूर्ण, भाईचारे और इंसानियत की प्रबलता हो। धार्मिक रूढ़िवाद, जाति के संकीर्ण बंधनों तथा अनाचारों के प्रति उन्होंने सदैव विरोध का स्वर उठाया। गुरूग्रंथसाहिब में संकलित नानकदेव के पदों में जाति के अंहकार को त्यागने की बात कही गई है। आज भी समाज में जातिवाद पूरी तरह से दूर नहीं हुआ है लोग जाति के नाम से पागल हो बैठे हैं। छूआछूत और जातिगत भेदभाव आज भी है। संत साहित्य वह साहित्य है जो वर्तमान समय की जाति–पाति के भेदभाव पर टिकी इस सामाजिक और धर्म की व्यवस्था को बदलने की शक्ति देता है।

संत साहित्य द्वारा सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय क्षेत्रों में मानवतावादी मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई। जब हम समाज में मानव मूल्य की बात करते हैं, तब आवश्यक हो जाता है कि समाज और मानव मूल्य के संबंधों को सही अर्थों में समझा जाए। सामान्यतः सभी समाज में समाज द्वारा निर्मित कुछ मानक तथा मूल्य स्वीकृत होते हैं जिनमें मानवता के कल्याण हेतु चिंतन होता है। वहीं दूसरी तरफ समाज में कुछ ऐसे विचार या अवधारणाएँ होती हैं जिससे समाज में विकृति आती है। अतः एक स्वस्थ और सुंदर समाज के लिए यह आवश्यक होता है कि जिन तत्त्वों से समाज में विकृति, विसंगति उत्पन्न हो उनका निषेध किया जाए और जिन तत्त्वों से समाज में उदात्तता और मानवीय मूल्यों के बोध का जागरण हो उनका विधान एवं स्वीकार किया जाए। इस प्रसंग में कबीर का दोहा एकदम सटीक जान पड़ता है जिसमें वो कहते है कि साधु अर्थात सच्चे इंसान को सुप की तरह होना चाहिए जो अच्छी चीजों को अपने पास रखकर खराब चीजों को फेंक देता है।

ऐसे ही संत तुकाराम ने अपने अंगों में मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। दया, प्रेम, करुणा, सील, संतोष इत्यादि इनकी वाणी में प्रस्तुत हुए हैं, तुकाराम कहते हैं,

"धर्म भूताची ते दया। संत कारण ऐसिया
नन्हे माझे मत। साक्षी करूनि सांगे संत।"[8]

अर्थात् वह मानते हैं कि प्राणिमात्र पर दया करना ही धर्म है।यही संत का लक्षण है।

रवीन्द्र कुमार सिंह लिखते हैं, "संत कवियों की वाणी ने जो अलख जगाया है, वह हमारे आज के टूटते बिखरते, जीवन के सापेक्ष उतना ही मूल्यवान है जितना अपने युगीन संदर्भों में था। समाज कल्याण, मानव मूल्य, मानवीय सरोकार ही साहित्य की प्रासंगिकता को पुष्ट करते हैं।"[9]

निष्कर्ष

अंत संतों का आक्रामक और विद्रोही स्वभाव हमें उनकी रचनाओं में दिख जाता है किन्तु उनकी गहरी मानवीय संवेदनाएँ कविता में जहाँ स्थान पाती हैं वहीं प्रकट होकर उनके काव्य को और व्यापक तथा प्रभावशाली बनाती हैं। भारतीय संत परम्परा ने टूटते सांस्कृतिक मूल्यों को पुनः जीवंत करने का कार्य किया। मध्यकालीन संत कवियों ने लोक साहित्य की रचना करते हुए जन–जन को जोड़ने का काम किया। जनता में छुपे एकात्म भाव को जाग्रत कर लोगों को समानता के एक धरातल पर लाने की जी तोड़ कोशिश की और जो मानवीय मूल्यों की स्थापना संतो ने की थी वह आधुनिक समाज, समय के अनुकूल सार्थक और प्रसांगिक जान पड़ती है हमें अपने समाज को कलुषित होने से बचाने के लिए संत वाणी के मर्म को समझने उसे आत्मसात करने की आवश्यकता है

संदर्भ सूची–

1. वर्मा, डॉ धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड. द्वितीय संस्करण.वाराणसी, 2018, पृष्ठ संख्या –854
2. चतुर्वेदी, परशुराम, उत्तरी भारत की संत परम्परा, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली 2009, पृष्ठ संख्या –7
3. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण.दिल्ली, 1976, पृष्ठ संख्या –324
4. दास, डॉ श्यामसुंदर, कबीर ग्रन्थावली, वाणी प्रकाशन.नई दिल्ली, 2014.पृष्ठ संख्या–64
5. चतुर्वेदी, परशुराम, दादूदयाल, नागरी प्रचारिणी सभा. वाराणसी, 2023.पृष्ठ संख्या.–76
6. मोर्या, डॉ संगीता, 2024 संत साहित्य में श्रम सौंदर्य के गीतों का सामाजिक संदर्भ, अपनी माटी.देखा 02/02/25(प्रातः 6बजे) https://www.apnimaati.com/2024/01/blog-post_26.html?m=1
7. भारती, कँवल, संत रविदास एक विश्लेषण, बोधिसत्त्व प्रकाशन.रामपुर, परिवर्धित द्वितीय संस्करण–2000, पृष्ठ संख्या –171
8. देवसरे, हरिकृष्ण, संत तुकाराम.सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन. दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या –49
9. सिंह, रवींद्र कुमार, संत–काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता. वाणी प्रकाशन, आवृत्ति संस्करण. दिल्ली, 2015. पृष्ठ संख्या –38